चन्दामामा

माँ-बच्चों का मासिक पत्र

हमारे देश पर बहुत दिनों तक मुगल बादशाहों ने राज किया था। उनमें से एक का नाम औरङ्गजेब था। कहा जाता है कि औरङ्गजेब के शासन में हिन्दुओं को बहुत तकलीफें उठानी पड़ी थीं। औरङ्गजेब विधर्मियों से द्वेष करता था। इसलिए उसने हिन्दुओं और खास कर सिखों को बहुत सताया।

औरङ्गजेब के अत्याचारों से हिन्दू और सिख लोग पस्त हो गए। उनका आत्म-विश्वास नष्ट होने लगा। दिन-दिन हालत बिगड़ती ही गई।

ऐसे समय वीरवर गुरु गोविन्दसिंह सिखों के गुरु और अगुआ बने। गुरु गोविन्दसिंह की उमर अभी कच्ची थी, मगर बहादुरी और नीति-कुशलता में वे पक्के थे। वे सब तरह से सिखों के मुखिया होने के लायक थे।

गुरु का आसन ग्रहण करते ही उन्होंने देखा कि सारे देश की और खास कर उनके अनुयाइयों की हालत बहुत खराब हो गई है। नौजवान लोग जिनको आगे बढ़ कर जिम्मेदारी लेनी चाहिए थी, कायर और नामर्द बन गए थे। इसलिए गुरु ने सोचा कि "पहले सिखों को बलिदान की आग में तपा कर शुद्ध कर लेना चाहिए। पीछे देश की हालत अपने आप सुधर जाएगी।"

यह सोच कर उन्होंने एक दिन एक लम्बे-चौड़े बगीचे में मुकाम किया और अपने सभी नौजवान चेलों को वहाँ जमा किया। सब लोग आकर बगीचे में बैठ गए और उत्सुकता से देखने लगे कि "देखें, गुरु जी क्या कहने जा रहे हैं !"

लेकिन लोग जो सोच रहे थे, वह सब कुछ नहीं हुआ। गुरु जी ने न उन्हें फटकारा और न लम्बा-चौड़ा व्याख्यान ही

धीरज सिंह

झाड़ा। उलटे वे सबको उपस्थित देख कर एक खीमे के अन्दर चले गए और दूसरे ही क्षण परदा हटा कर हाथ में नङ्गी तलवार लिए बाहर आ गए और गरज कर बोले- "स्वतन्त्रता की वेदी पर कुरबान होने के लिए वीर चाहिए मुझे ! जिसमें हिम्मत हो, आगे आए !" उपस्थित युवक लोग एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। गुरु के हाथ की वह लपलपाती तलवार व्यङ्ग-भाव से विहँस उठी। उसका पानी बहुत तेज था। कूद पड़ने का किसी को साहस न हुआ।

आखिर एक नौजवान धीरे से उठा और बोला-"में तैयार हूँ !" यह कह कर वह सामने आ खड़ा हुआ। उसका नाम भाई दयासिंह था। गुरु उसे खीमे के अन्दर ले गए। अन्दर से 'खट' की आवाज़ हुई जैसे किसी का सिर उड़ा दिया गया हो। दूसरे ही क्षण खून टपकती तलवार हाथ में लिए गुरु बाहर आए और बोले- "और कोई है माई का लाल ?"

इस बार एक स्वर से "में तैयार हूँ !" कह कर चार नौजवान आगे आ गए। उन को भी गुरु अपने साथ अन्दर ले गए। फिर चार बार 'खट-खट' की आवाज़ हुई। खून का नाला खीमे के बाहर बह चला। खून से नहाई तलवार हाथ में लिए गुरु खीमे से बाहर निकले। उन्होंने गम्भीर-स्वर में फिर एक बार बलिदानी वीरों को पुकारा। इस बार बहुत से नौजवान उठ खड़े हुए और मस्ती से झूमते आकर गुरु के आगे खड़े हो गए। कुरबानी का एक अजब समा बँध गया।

नौजवान ही नहीं; साठ-साठ सत्तर-सत्तर साल के बूढ़े भी एक दूसरे को ढकेलते हुए आगे बढ़ने लगे। यह देख कर गुरु ने कहा-"ठहरो!" और वे खीमे के अन्दर चले गए। देखते देखते खीमे का परदा फिर एक बार हटा और गुरु गोविन्दसिंह

बाहर आए। उनके चेहरे पर गर्ब-भरी हँसी खेल रही थी। उनके पीछे ये पाँचों बलि-पन्थी वीर युवक खड़े थे। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

"सत श्री अकाल !" "गुरु गोबिन्द सिंह की जय !" के नारों से आसमान गूँजने लगा। इसके बाद गुरु गोबिन्दसिंह ने कहा-"इन नौजवानों ने साबित कर दिया कि यह जाति अभी जिन्दा है। इन पाँचों ने देश, जाति और धर्म का मान रख लिया। ये मेरे प्यारे शिष्य हैं। जाति के रत्न हैं। उचित नेतृत्व के अभाव में दुश्मनों से परेशान हो हमारी जाति की शूरता राख में छिपे अङ्गारों की भाँति मलिन हो रही थी। लेकिन आज मुझे विश्वास हो गया कि ऐसे वीरों के रहते कोई भी जाति ज्यादा दिन सोई नहीं रह सकती। आओ ! बीरो! इन दहकते अङ्गारों को फूँक कर अब हम ऐसी भीषण ज्वाला धधका दें कि इस देश का कोन कोना कौंध उठे।" इतना कह कर गुरु गोबिन्द्रसिंह खामोश हो गए। उनकी चेताने वाली वाणी ने उपस्थित बीरों के हृदय की बची-खुची कायरता की कीच को भी धो

बहाया। वे जान पर खेलने को तैयार हो गए। तब गुरु ने परदा खींच कर उठा दिया। सबने आश्चर्य के साथ देखा कि वहाँ पाँच बकरे मरे पड़े हैं। तब सबकी समझ में आ गया कि गुरु ने उनकी बहादुरी की परीक्षा लेने के लिए यह सारा स्वाङ्ग रचा था।

उसके बाद गुरु ने उपस्थित वीरों को एक बड़ी भारी दावत दी। तब से वे पाँचों बीर, जो सबसे पहले गुरु का आह्वान सुन कर स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर अपने प्राणों की करवानी चढ़ाने आए थे, उनके मुख्य शिष्यों में गिने जाने लगे और उनका नाम ही "पाँच-प्यारे" पड़ गया।

गुरु गोविन्दसिंह के बाद भी सिखों के अनेक गुरुओं ने बलिदान की इस परम्परा को जारी रखा। सिखों के खून से सिञ्च कर पञ्जाब की भूमि उर्वर हो गई। उनके बलिदानों का ही प्रभाव था कि अनेकों सङ्कट झेल कर भी उस जाति का धैर्य विचलित नहीं हुआ और बारम्बार मौत से सामना होने पर भी वह जाति जिन्दा रही। इतना ही नहीं, सिख लोग जो पहले लड़ाकू नहीं थे, धीरे धीरे अपनी वीरता और युद्ध-कौशल के लिए भारत के इतिहास में प्रसिद्ध हो गए।

संसार के विभिन्न राष्ट्रों का वृत्तान्त पढ़ने से हमें विदित होता है कि जो जाति जिनने कष्ट भोगती और बलिदान करती है, वह उतनी ही सजीव और सशक्त बनती है। इसके विरत जो जाति भोग-विलास और राग-रङ्ग में डूब जाती है, वह अपनी असलियत गँवा बैठती है और दुर्बल या कायर बन जाती है।

सङ्कट समय में मनुष्य जो शिक्षा प्राप्त करता है वही उसे जीवन की राह पर सम्बल देती है। दीपक की बत्ती कटने पर ज्यादा रोशनी देने लगती है, आग में तप कर सोना शुद्ध और अधिक उज्वल बनता है। उसी तरह बली-वेदी पर चढ़ने के बाद ही व्यक्ति और राष्ट्र को मर्यादा और महत्ता प्राप्त होती है।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि जो छोटी-मोटी हर बात पर लड़ने और जान देने को तैयार हो जाता है वही बहादुर और जवाँमर्द है। ऐसे लोगों को सिर्फ हठी और सनकी ही कहा जायगा। बलिदान का लक्ष्य भी पवित्र और महान होना चाहिए। तभी बलिदान की सार्थकता प्रगट होती है। कुरबानी ही वह कसौटी है जिस पर इन्सान का रङ्ग निखरता है।

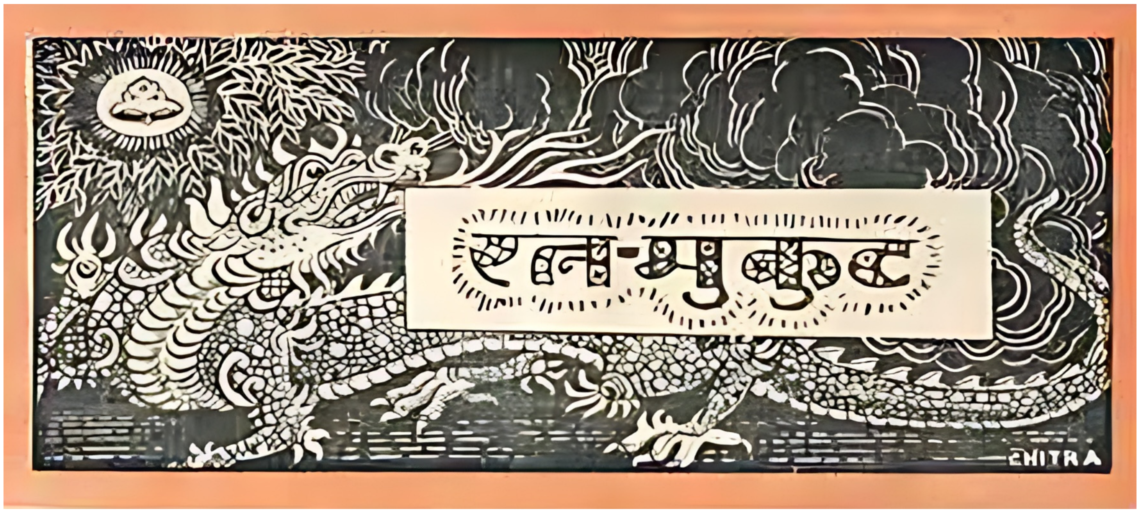

दो हज़ार साल पहले ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे 'भल्लाण' नाम का एक बहुत मशहूर राज्य था। उस राज्य का स्वामी था 'हर्षपाल'। हर्षपाल बड़ा ही शूर-वीर और धर्मात्मा था। उसके शासन में प्रजा बहुत सुख से रहती थी।

फिर भी उस राज्य के लोगों को, जिन्हें किसी चीज़ की कमी न थी, एक चिन्ता सता रही थी। बात यह थी कि किसी कारण से हर्षवाल ने व्याह न करने का निश्चय सा कर लिया था। इसका रहस्य किसी को मालूम न था। लेकिन राज्य का बच्चा-बच्चा जानता था कि व्याह का नाम लेते ही हर्षपाल बौखला उठता है।

मन्त्री और राज्य के गण्यमान्य बड़े-बूढ़े बहुत दिन तक इस आशा में थे कि राजा का मन बदलेगा। लेकिन अन्त में निराश होकर वे सब एक जगह जमा हुए और विचार करने लगे कि अब क्या किया जाए। काफी देर तक सोच-विचार करने के बाद वे एक तपस्वी के पास गए। वह तपस्वी दूर की एक पहाड़ी पर गुफा में रहा करता था। लोगों ने उससे अपनी बिपन्न समस्या कह सुनाई। तपस्वियों से संसार की कोई बात छिपी नहीं रहती। सोच-समझ कर उस तपस्वी ने उन लोगों को एक फल दिया और कहा-"यह फल किसी तरह अपने राजा को खिला देना! बस तुम्हारा काम बन जाएगा।" वे लोग फल लेकर खुशी-खुशी लौट आए। भोजन के समय दूसरी चीजों के साथ वह फल भी राजा को परोस दिया गया। राजा ने वह फल खा लिया। रात हुई और

राजा सोया। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। सहसा हर्षपाल की नींद टूट गई। कहीं से मधुर गान की आवाज़ उसके कानों में आने लगी। मन्त्र-मुग्ध सा हर्षपाल उठा और अपने किले से निकल कर उस ओर चल पड़ा, जहाँ से वह मीठी तान आ रही थी।

कुछ दूर जाने पर राजा ने देखा कि सामने एक सुन्दर उपवन है। उस उपवन के बीचों-बीच एक निर्मल सरोवर है। उस के तट पर सहेलियों के बीच बैठी हुई, एक सुन्दर गन्धर्व कन्या वीणा पर गा रही है। दृष्टि पड़ते ही उस वीणा वादिनी ने हर्षपाल के मन को मोह लिया। राजा ने सङ्कल्प कर लिया कि वह व्याह करेगा तो इसी सुन्दरी से करेगा; और किसी से नहीं। सवेरा होते ही उसने मन्त्रियों से अपना निश्चय सुना दिया। झट उनको मालूम हो गया कि यह उस तपस्वी के फल का प्रभाव है। उस फल में ऐसा गुण था कि उसे खाने वाले की पहली नज़र जिस कुमारी पर पड़ जाती थी, उसी पर वह मुग्ध हो जाता था। उस फल के प्रसाद-स्वरूप हर्षपाल का व्याह बड़ी धूम-धाम के साथ, गन्धर्व कुमारी से हो गया। राजा के साथ रानी भी पाकर राज्य की प्रजा फूली न समाई। यथा- समय हर्षपाल के एक पुत्र हुआ। उसका नाम महीपाल पड़ा और वह बड़े लाड़-प्यार से पाला-पोसा जाने लगा।

एक दिन की बात है कि हर्षपाल जङ्गल मैं शिकार खेल रहा था। बहुत भटकने पर भी उस दिन कोई शिकार उसके हाथ न लगा। राजा भटकता-भटकता उस घने जङ्गल में बड़ी दूर तक घुसता चला गया। वह बहुत थक गया था और भूख-प्यास के मारे कदम उठाया न जाता था। प्यास बहुत तेज हो गई थी। वह चारों ओर झरने तालाब की खोज करने लगा। खोजते खोजते उसे दूर

पर एक कुटीर दिखाई दी। उसमें जङ्गल का राजा किरात राज रहता था। उस कुटीर में एक सुन्दरी युवती भी दिखाई दी। वह थी किरात राज की पुत्री 'मन्दाकिनी'।

पानी माँगने पर इठलाती बल खाती वह बाहर आई और एक लोटे में पानी ले आई। उस युवती के हाव-भाव देखते ही राजा का मन बेकाबू हो गया। उसने उस युवती को अपनी पत्नी बना लिया और उस के साथ किले में लौटा।

मन्दाकिनी ने अपनी चतुरता से प्रजा का मन भी मोह लिया। प्रजा सोचने लगी कि "छोटी रानी तो बहुत अच्छी हैं; आदमी शील से पहचाना जाता है, जात से नहीं।" यह सोच कर लोगों ने सन्तोष कर लिया। हर्षपाल मन्दाकिनी के साथ सुख से रहने लगा।

सौभाग्य से मन्दाकिनी के भी एक लड़का पैदा हुआ। अब तो राजा उसका गुलाम हो गया। वह उसके इशारों पर नाचने लगा।

इससे मन्दाकिनी का मिजाज़ भी बदला। वह अपनी सौत को पटरानी के पद से हटाने के लिए तरह-तरह की साजिश खड़ी करने लगी। इन कुचक्रों के मारे बड़ी रानी नाकों दम हो गई। हालत यहाँ तक पहुँची कि छोटी रानी ने रनवास की दासियों को भी अपनी ओर कर लिया और गन्धर्व-कुमारी का जीना भी दूभर बना दिया। दरबारी तो उस की मुट्ठी में थे ही। धीरे-धीरे उसने राजा की भी परवाह करनी छोड़ दी।

बेचारी गन्धर्व कुमारी चारों ओर से लाचार हो गई थी। उसने देख लिया कि मन्दाकिनी ने राजा पर जादू सा कर दिया है। उसने सोचा-"नाम के लिए में पटरानी हूँ। नौकर-चाकर भी मेरी नहीं सुनते। मैं रानी कैसी ? अब तो छोटी रानी का राज है ! राजा उसकी कोई बात नहीं टाल सकता। फिर यहाँ रह कर नाहक अपनी

बेइज्जती क्यों कराऊँ ? बेटा महीपाल तो एक न एक दिन राजा बनेगा ही। राज-कुल का नियम तो कोई नहीं तोड़ सकता। और जब वह राजा होगा, तो में भी लौट आऊँगी। तब तक कहीं जाकर छिपी रहूँ।" यह सोच कर एक रात वह चुपके से उठी और अन्धकार में अदृश्य हो गई।

आँख की किरकिरी सौत को इस तरह गायब हो जाते देख मन्दाकिनी को बेहद खुशी हुई। उसने सोचा- "अब उस चुड़ैल के लड़के की खबर ले जरा ! देखूँ अब मेरे लड़के को राजा होने से कौन रोक सकता है !"

इस तरह मन्दाकिनी ने अपने लड़के अर्धपाल को युवराज बनाने का सङ्कल्प कर लिया।सोतेले राजकुमार के प्रति उसका व्यवहार और भी कठोर बन गया। दरबारी लोग तो उसके कटपुतले ही थे। प्रजा उसे चाहती भी थी। धीरे-धीरे उसने पण्डितों, पुरोहितों और धर्माचार्यों को भी अपनी मुट्ठी में कर लिया।

सतिले लड़के के प्रति द्वेष और राजगद्दी के प्रति मोह मन्दाकिनी के मन मे इतना बढ़ा कि वह एक भीषण कर्म करने पर उतारू हो गई। उसने सोचा-"इसके जीते-जी एक तो मेरे लड़के को गद्दी नहीं मिलेगी, और अगर मिल भी गई तो वह उस पर ज्यादा दिन टिक न सकेगा। जब तक मेरी आँख का यह कोटा काँटा रहेगा, तब तक मेरी आँखों के तारे के लिए खतरा बना रहेगा।" यों उसके दुष्ट हृदय में बिष का यह पौधा तेजी से लहलहाने लगा।

चिन्ता-बश मन्दाकिनी के लिए खाना-पीना हराम हो गया। शीघ्र ही उसकी अभिलाषा के अनुकूल परिस्थिति भी उत्पन्न हो गई।

* * * *

उस वर्ष भल्लाण-राज्य में भीषण अकाल पड़ा। दो तीन साल से पानी नहीं बरसा था। किसी के घर में अन्न का एक कण भी न रह गया था। हरियाली तो कहीं नाम को भी न थी। आखिर पेड़ों के पत्ते तक सूख गए थे। जगह-जगह दरारें क्या फट गई थी कि धरती माता की फटी छाती देख कर सब को डर लगता था। सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ था। जगह-जगह आदमियों और जानवरों की हड्डियों के बिखरे ढेर नज़र आते थे।

ऐसे समय उस राज में एक अजीब अफवाह उड़ी। जगह-जगह लोग काना-फूसी करने लगे-"राजा ने गन्धर्व-कुमारी से विवाह करके घोर पाप किया था। क्योंकि गन्धर्व देवता होते हैं। इस अपवित्र विवाह से राजा के पुत्र भी हुआ। इसी से देव-गण गुस्सा हो गए हैं। गन्धर्व कुमारी तो अदृश्य हो गई, लेकिन इस अपराध का दण्ड अब हमें भुगतना पड़ रहा है।" मालूम नहीं, यह अफवाह किसने उड़ाई थी। लेकिन बिजली की तरह यह राज्य के कोने-कोने में फैल गई। जब इसकी खबर राजा के कानों तक पहुँची, तो वह बहुत व्याकुल हुआ और सोचने लगा-"क्या

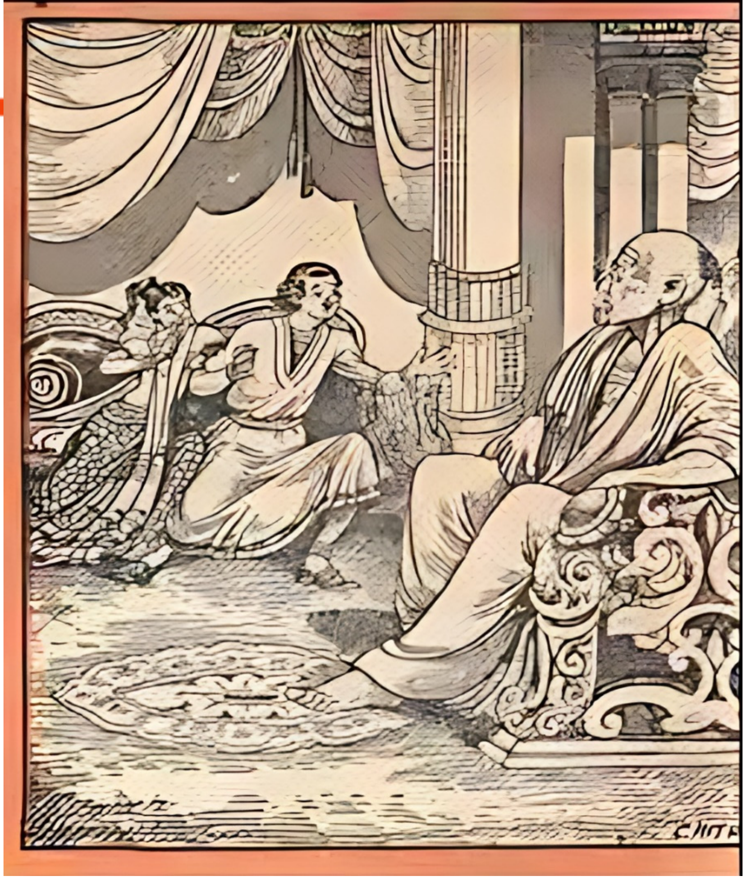

सचमुच यह सब मेरे ही पापों का फल है ! फिर तपस्वी ने मेरे लिए वह फल क्यों दिया था ? अन्यथा न मैं वह ब्याह करता और न यह सन्तान ही होती !"

राजा इस तरह घोर असमञ्जस में पड़ गया और तय न कर सका कि क्या किया जाए। उसके इस असमञ्जस को ताड़ कर रानी ने सुझाया कि इस विजय में राज-पुरोहित की सलाह लेनी चाहिए ,क्योंकि ऐसे विषयों पर निर्णय करने का अधिकार उन्हीं को होता है। बस, राजा ने राज पुरोहित को बुला भेजा और उनकी राय

माँगी। राज पुरोहित ने कहा-"ऐसा विवाह वास्तव में शास्त्राचार के विरुद्ध है।" "फिर प्रायश्चित्त क्या है ?" राजा ने पूछा। पुरेहित जी जरा हिचकिचाए। उनकी आँखों के सामने महीपाल की मासूम सूरत एक बार फिर गई। इतने में चौंक कर उन्होंने देखा कि रानी की भौंहें तन गई हैं। उन्होंने सोचा-"भगवन! यह कैसा पाप मेरे सिर मढ़ा जा रहा है ?" लेकिन लाचार थे। क्या करते ? थरथराते हुए बोले-"राजन् ! राजाज्ञा टाली नहीं जा सकती। इसलिए हमारा निवेदन सुनिए ! देश के सिर से इस सङ्कट को टालने का एक ही उपाय है। शास्त्रों का कहना है कि देव-जाति की स्त्रियों से उत्पन्न सन्तान को पुनः देव- लोक भेज देना चाहिए।" व्याकुल होकर राजा बोला-"मेरी समझ में नहीं आया। आप जरा साफ़-साफ़ कहिए।" इस पर राज-पुरोहित जी बोले-"राजन् ! आप मुझे एक दिन की अवधि दीजिए। मैं अन्य पुरोहितों से भी पूछ लूँ। कल आकर मैं अपनी राय साफ-साफ बता दूँगा !"

दूसरे दिन राज पुरोहित ने आकर राजा से कहा-"राजन् ! मेरी ही नहीं, अन्य पुरोहितों की भी यही राय है कि देश को दुष्काल से बचाने के लिए महीपाल स्वर्ग भेज देना चाहिए। सद्गति के लिए शाखानुसार, काली मैया के सामने उसका बलिदान कर देना चाहिए।"

यह भयङ्कर समाचार सुनते ही राजा हृतचेत हो गया। मालूम होता था, मानों उसके हृदय को हजारों बर्छियों से कोई छेद रहा हो। उसने कभी नहीं सोचा था कि राजा भी कभी इतना बेबस हो सकता है। जब कि राज्य की सारी प्रजा, दरबारियों और पण्डित-पुरोहितों की यही राय थी तो अकेला वह क्या कर सकता था ?

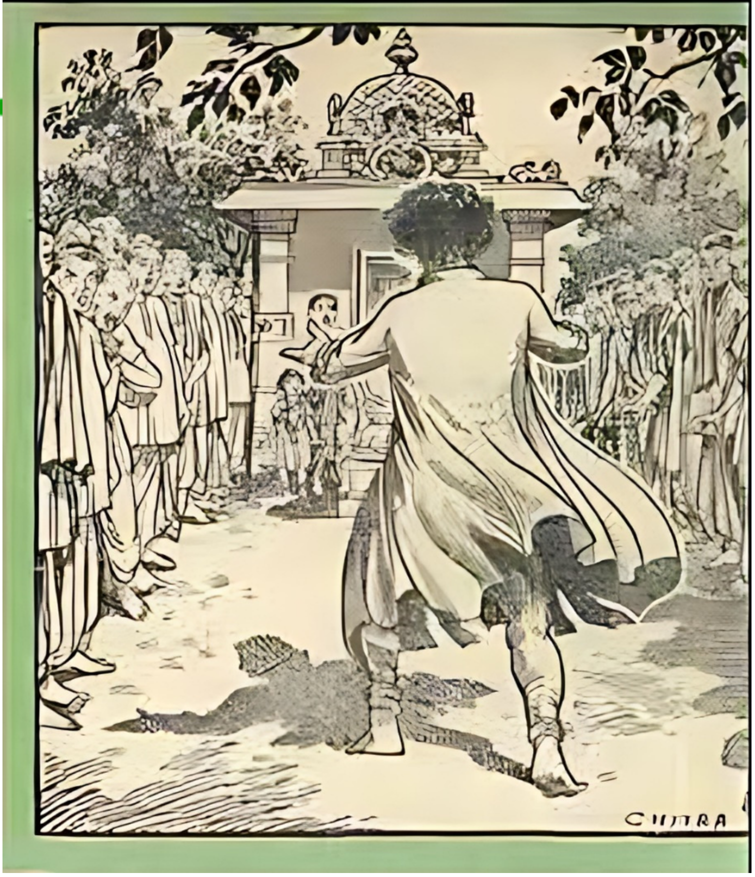

फिर पुत्र का मोह ! ऐसा कौन अभागा होगा, जिसकी छाती ऐसे शोक से टूक-टूक न हो ! उधर प्रजा की पुकार दिन-दिन बढ़ती जा रही थी। आखिर राजा टाल न सका। परिस्थितियों के दबाव में पड़ कर पुत्र चलि के लिए उसने हामी भर दी।

बलिदान की तैयारियाँ होने लगीं। भद्र काली के मन्दिर के सामने बलिवेदी बनाई गई। बलि के लिए जो दिन निश्चित हुआ, उस दिन राज्य की सारी प्रजा उस मन्दिर के पास जमा होने लगी। जहाँ नज़र पड़ती, नरमुण्ड ही दिखाई देते थे। फिर भी चारों ओर सन्नाटा था !

उधर अबोध राजकुमार महीराल राज-महल में उछल-कूद रहा था। उस बेचारे को क्या पता कि उसके नन्हे सिर के लिए इतनी बड़ी तैयारी हो रही है। पुरोहित-गण आए और यथा विधि से उसे नहला धुलाया। फिर सजा-धजा कर बाजे-गाजे के साथ उसे मन्दिर के पास ले आए। बलिवेदी पर खड़ा करके मन्त्रोच्चार करने लगे। बालक महीपाल अचरज से उस भीड़ को देख रहा था ! इतनी बड़ी भीड़ उसने कभी नहीं देखी थी।

इतने में राजा हर्षपाल, जो वहीं कहीं मुँह छिपाए खड़ा था, पागल की तरह वेदी के पास दौड़ा आया। लपक कर उसने अपने लाडले बेटे को गोदी में उठा लिया और उपस्थित जन समूह को पुकार कर कहने लगा-"प्यारे भाइयो ! पुरोहितों ने मेरे पहले विवाह को शास्त्र विरुद्ध ठहराया है। सब लोगों की राय है कि उसी विवाह के कारण देवता मुझसे अप्रसन्न हैं और इसी से इस देश में यह भयङ्कर अकाल पड़ा है। उस पाप के प्रायश्चित्त के लिए मेरे पुत्र की बलि दी जा रही है। प्रजा की पुकार अनसुनी नहीं की जा सकती। लेकिन मेरी

एक विनती है। राजा के नाते नहीं, एक पिता के नाते।"

राजा इतने कातर स्वर में बोल रहा था कि लोगों की आँखें भर आई।

सब लोग चुप थे। कुछ रुक कर राजा कहने लगा-"यह अकाल न पड़ता तो महीपाल एक दिन इस देश के सिंहासन पर बैठता और राजमुकुट उसके माथे पर होता। लेकिन विधि का लिखा कौन मिटा सकता है? कहाँ राज सिंहासन और कहाँ बलि वेदी ! फिर भी मैं चाहता हूँ कि एक बार इस अभागे के सिर पर राजमुकुट रख कर देखूँ और अपनी आँखें ठण्डी कर लूँ। देखूँ, काटे जाने वाले इस सिर पर राज-मुकुट कैसा सुहाता है ? बस, और में कुछ नहीं चाहता!" राजा ने यह बात इतने करुण-स्वर में कही कि लोगों का हृदय पानी-पानी हो गया। रानी डर गई कि कहीं बना-बनाया खेल बिगड़ न जाए।

तब राज पुरोहित ने उठ कर कहा-"हमारे प्रभु पजा को पुत्र से भी बढ़ कर मानते हैं। ऐसा कौन अभागा होगा, जो ऐसे राजा की यह छोटी सी बात न माने !"

जितने लोग वहाँ जमा थे सभी हर्षपाल की जय बोलने लग गए। राजा ने धीरे से

रत्न-जटित मुकुट अपने सिर से उतारा और बड़े प्यार से महीपाल के शीस पर रख दिया। राजकुमार के सिर पर मुकुट इतनी शोभा देता था कि देख कर सब लोग दङ्ग रह गए। उधर रानी की व्यग्रता पल-पल बढ़ती जा रही थी। वह पुरोहित और बधिक की ओर क्रुद्ध दृष्टि से देखने लगी। तब राज पुरोहित ने वेद-मन्त्र पढ़े और "जय चण्डिके ! जय दुर्गे !" कह कर देवी की स्तुति की। बधिक ने खड्ग ऊँचा किया। लाखों नज़रें उस अबोध मुकुटधारी बालक के मुख पर गड़ गई। ऐसे समय-

[सशेष]

पुराने जमाने में काञ्चनपुर पर कालकेतु नाम का राजा शासन करता था। वह बड़ा घमण्डी था। उसका ख्याल था कि राजा भगवान के बराबर है और उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

बहुत से लोगों ने उसे समझाया- "लक्ष्मी बड़ी चञ्चला होती है। फिर राज्य-लक्ष्मी का तो कहना ही क्या ? दुनिया में बहुत से राज उठे और गिरे। इसलिए अधिकार का गर्व न करना चाहिए।" लेकिन घमण्डी कालकेतु उनकी बातें क्यों सुनने लगा ? वह समझता था कि कोई उसे गद्दी पर से हटा नहीं सकता। इसलिए छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सबकी बेइज्जती करता रहता था। उस राज में जितने लोग थे सभी उसे देख कर जलते थे।

काञ्चनपुर में एक बड़ा ही प्रसिद्ध मन्दिर था। उस मन्दिर में हर साल बड़ी धूम-धाम से एक उत्सव होता था, जिसे देखने के लिए दूर-दूर के लोग भीड़ लगा कर आया करते थे। उस उत्सव की प्रशंसा सुन कर कालकेतु एक बार उसे देखने चला। उसके पीछे मन्त्री-गण, दरबारी, सामन्त, चारण और नौकर-चाकर भी चले।

राजा जब मन्दिर में पहुँचा तो पण्डित लोग पुराण बाँच रहे थे। पुरोहित-गण मधुर स्वर से मन्त्रोच्चार कर रहे थे। राजा अन्दर गया तो पुरोहित एक श्लोक पढ़ रहा था। उसका मतलब था-"हे ईश्वर ! तुम सर्व शक्तिवान हो। चाहो तो राजा को रङ्क बना सकते हो और रङ्क को राजा।"

यह श्लोक सुन कर राजा कालकेतु को ऐसा लगा, जैसे उसके शरीर में सैकड़ों बिच्छुओं ने डङ्क मार दिया हो। अपने सहज राज दर्प के कारण उसने सोचा-"क्या कहता है यह कङ्गाल ब्राह्मण ? ईश्वर

शोभाराम पाण्डे

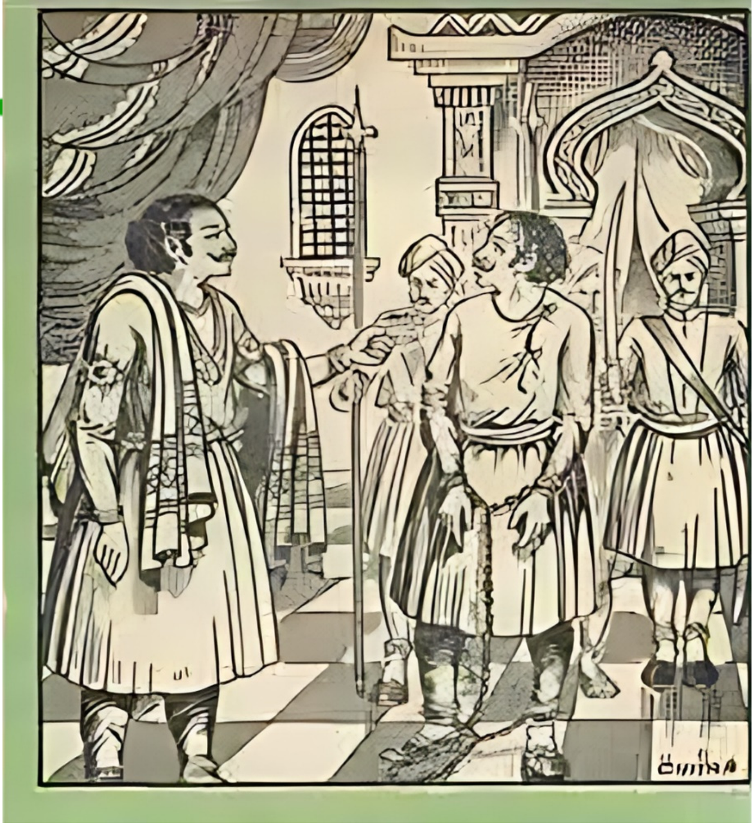

राजा को रङ्क और रङ्क को राजा बना सकता है ? कैसी पागलों की सी बात है !"

गर्व-वश राजा यों सोचने ही लगा था कि एक अजीब खुमारी ने उसे घेर लिया। बार-बार जम्हाइयाँ आने लगी और पलके नींद के बोझ से दबी जाने लगीं। उसने आँखें मूँद ली। जब थोड़ी देर बाद आँखें खुली तो उसने देखा कि चारों ओर अन्धेरा हैं। मन्त्री, दरबारी, चारण, नौकर-चाकर, कोई वहाँ नहीं। कहीं टिमटिमाते दीए की रोशनी भी नहीं। उस अन्धेरे में हाथ को हाथ नहीं सूझता था।

अब तो राजा कालकेतु घबरा गया। सारी देह पसीने से तर हो गई। प्यास के मारे गला सूखने लगा। किसी तरह टटोल कर वह आगे बढ़ा और फाटक के पास पहुँचा। जोर से फाटक को झकोरने और चिल्लाने लगा-"अरे कोई है ! खोलो फाटक ! मैं राजा हूँ। राजा कालकेतु ! खोलो फाटक ! नहीं तो......" वह इतने जोर से चिल्लाया कि सारा मन्दिर गूँज उठा। मन्दिर के बाहर फाटक पर दो पहरेदार खड़े थे। अन्दर की आवाजें सुन कर उनको बहुत अचरज हुआ। उन दोनों ने सोचा-"यह क्या ? अभी तो महाराज पूजा-पाठ ख़तम होते देख अपने दरबारियों के साथ बाहर निकले थे ! हमने अपनी आँखों उन को जाते देखा। फिर यह कौन है जो 'राजा-राजा' कह कर अन्दर से चिल्ला रहा है ? यह कोई पागल या पियक्कड़ तो नहीं है !" वे दोनों आपस में कहने लगे।

कुछ भी हो, दरवाज़ा तो खोलना ही था। पहरेदारों ने दरवाजा खोला। तुरन्त एक आदमी बिजली की तरह झपट कर बाहर आया और अन्धेरे में गायब हो गया। पहरेदारों ने दौड़ कर उसे पकड़ना चाहा। लेकिन तब तक वह दूर निकल गया था।

कालकेतु बेतहाशा दौड़ कर राज-महल में पहुँचा। वहाँ जाकर चिल्लाने लगा-"अरे! कौन है वहाँ ? बुला तो ला मन्त्री और दरबारियों को ! किस की इजाज़त से वे लोग मन्दिर से चले आए थे ? हमें वहाँ सोते छोड़ कर खिसक जाने की मजाल कैसे हुई उनकी ! जाओ, उन बेहूदों को घसीट लाओ यहाँ।" वह अपने सिपाहियों को हुक्म देने लगा।

"भई ! पकड़ लो इसे ! राजा के पास ले चलेंगे ! मारो नहीं, कोई पागल जान पड़ता है।" पहरेदारों के सरदार ने कहा। तुरन्त वे लोग कालकेतु को पकड़ कर राजा के पास ले गए। अपने ही जैसे एक आदमी को राज-वेष में गद्दी पर देख कर बेचारे कालकेतु की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। वह मुँह बाए देखता रह गया।

कालकेतु के रूप में जो देवदूत गद्दी पर बैठा हुआ था, उसे कालकेतु को देख कर हँसी आई। "तुम कौन हो भाई !" उसने पूछा।

"मैं कौन हूँ !" क्रोध के मारे कालकेतु का गला रुँध गया। आखिर किसी तरह गला साफ कर वह बोला-"मैं हूँ राजा कालकेतु ! समझ गए !" इतना कह कर वह अपने सिपाहियों की ओर मुड़ा और चिल्लाया-"यह तो कोई धोखेबाज है। मेरा भेष बना कर गद्दी पर आ बैठा है ! पकड़ लो इसे !"

देवदूत ने देखा कि रस्सी तो जल गई; मगर उसकी ऐंठन अभी नहीं गई है। वह मुसकुरा कर बोला-"यह तो शराबी मालूम होता है। आदमी तो होशियार जान पड़ता है। दरबार में किसी न किसी काम आ ही जाएगा ! कैद कर रखो इसे ! जब नशा उतरेगा तो देखा जाएगा।" कहने के साथ सिपाहियों ने राजा कालकेतु

को ले जाकर एक दुर्गन्ध भरी काल-कोठरी में कैद कर दिया। बेचारा बहुत चिल्लाया-"क्या समझ रखा है मुझे ? मैं कालकेतु हूँ। एक-एक को शूली पर चढ़ा दूँगा !"

लेकिन उसकी परवाह करने वाला कौन था वहाँ ? उल्टे वे लोग हँसने लगे। इससे वह और भी बौखला उठा।

कुछ दिन बाद उस देवदूत ने राज-महल में एक बड़ी भारी दावत का इन्तजाम किया। उस दावत में देश-विदेश के बहुत से राजा-रईस, अमीर-उमराव बुलाए गए। सारा राज-भवन खचाखच भर गया था।

जब सब लोग अपनी-अपनी जगह बैठ गए तो देवदूत ने कालकेतु को जो काल कोठरी में बन्द था, वहाँ ले आने की आज्ञा दी। सिपाही कालकेतु को पकड़ कर तुरन्त वहाँ ले आए।

यह क्या ! उसकी आज यह कैसी हालत थी ? वह विदूषक की तरह रङ्ग बिरङ्गे चीथड़ों की पोशाक पहने था। सिर पर एक लम्बी नुकीली टोपी पड़ी थी। हाथ में एक टेढ़ा-मेढ़ा, लम्बा सा डण्डा था। उसके कन्धे पर आखें मटकाता हुआ एक बन्दर का बच्चा बैठा था।

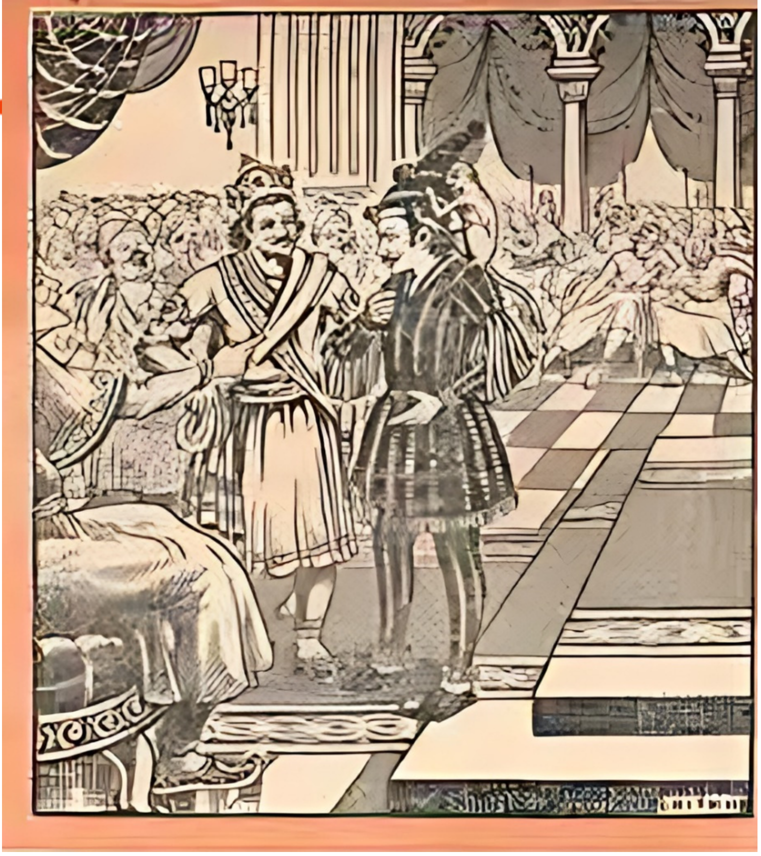

देवदूत ने इशारा करके उपस्थित सामन्तों और अमीरों से पूछा-"आप लोग इस मदारी को जानते हैं ?" यह सुन कर कालकेतु दाँत किटकिटा कर बोला-"भाइयो! आप लोगों ने मुझे पहचाना नहीं। यह मदारी नहीं, राजा कालकेतु है ! और यह जो राजा बना हुआ है, यह तो कोई धूर्त है जो भेस बदल कर आप लोगों को धोखा दे रहा है !" लेकिन उसकी बात सुन कर लोग खिलखिला कर कहने लगे-"वाह ! यह ममखरा तो बड़ा चतुर है। हँसाने की कला खूब जानता है।" सब लोग तालियाँ पीट कर कहकहा लगाने लगे। कालकेतु लहू

की घूँट पीकर रह गया। दावत खतम हो गई। कालकेतु को फिर कालकोठरी में डाल दिया गया।

इस तरह कुछ दिन और बीत गए। आखिर एक रोज़ देवदूत ने कालकेतु को बुलवा कर पूछा-"अब भी समझ में आया कि तुम कौन हो? बताओ तो अब ?" उसका प्रश्न सुनते ही कालकेतु गश खाकर गिर पड़ा। जब होश में आया तो रोते हुए देवदूत के चरणों में लोट कर बोला- "भगवान ! क्षमा करो। मैं कौन हूँ ? मैं तो अब एक पगला मात्र हूँ। किसी समय भारी घमण्डी था। उस समय में आदमी की क्या, भगवान की भी परवाह नहीं करता था। कैसा बेवकूफ था मैं ? मैंने सोचा था कि राजा भगवान से भी बड़ा होता है। लेकिन भगवान की कृपा जब मुझ पर से हट गई तो मेरे दरबारी ही मुझे पहचान नहीं सके। अब मेरी आँख खुल गईं हैं। मेरा घमण्ड चूर-चूर हो गया है। अब मुझे मालूम हो गया कि मैं कितना तुच्छ जीव हूँ।"

इस पर देवदूत ने सन्तुष्ट होकर सिर हिलाया और दोनों हाथ उठा कर आशीर्वाद दिया-"अच्छा हुआ जो घमण्ड चला गया। अब तुम सचमुच राजा हो गए हो। उठो! अब तुम फिर कालकेतु हो। अपना राज-वेष धारण करो।"

कालकेतु ने जब तक सर उठा कर देखा, देवद्त अद्दश्य हो गया था। वह फिर पहले का कालकेतु बन गया था। पोशाक बदल गई थी और मस्तक पर मुकुट शोभा दे रहा था।

लेकिन कालकेतु को अब अपनी असलियत मालूम हो गई थी। उस दिन से उसने कभी किसी का अपमान नहीं किया। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सब का समान भाव से आदर करने लगा। सब लोग उसे इससे प्यार करने लगे।

लक्ष्मी देवी के पुत्र का नाम कामदेव था। कामदेव बहुत ही सुन्दर पुरुष था। "जोड़ी ठीक मिलनी चाहिए।" यह सोच कर लक्ष्मी देवी ने तीनों लोक छान कर रती देवी नाम की एक सबसे सुन्दरी कन्या के साथ कामदेव का ब्याह कर दिया। नई जोड़ी सुख से रहने लगी।

एक बार इस दम्पति में लड़ाई हो गई। अपराध पुरुष का था। इसलिए रती देवी रूठ गईं और पति से न बोली। कामदेव चिन्तित होकर एक जगह जाकर लेट गया।

इतने में उसका मित्र अनिल वहाँ आया। उसने उसकी चिन्ता का कारण जानना चाहा। कामदेव ने सारा किस्सा कह दिया।

मित्र अनिल ने सलाह दी-"इसी जङ्गल में 'राग- बल्लरी' नाम की एक लता है। उस लता में सतरङ्गे फूल खिलते हैं। मैं जाता हूँ। उन फूलों का मकरन्द तुम्हें ला देता हूँ। जब रती देवी सो जाए तो उस मकरन्द की दो बूँदें उनकी पलकों पर डाल देना। जब तक वे जागे नहीं, तुम वहीं बैठे रहना। जागते ही उनकी नज़र तुम पर पड़ेगी। बस, उनका सारा क्रोध दूर हो जाएगा और वे तुम्हारे वश में आ जाएँगी।" यों अनिल ने उसे धीरज दिया। अनिल की बातें सुन कर कामदेव को बहुत आश्चर्य हुआ।

अनिल शीघ्र ही मकरन्द लाने चला गया। कामदेव वहीं उसकी राह देखता रहा। थोड़ी देर बाद वहाँ "तपन ! तपन ! मुझे छोड़ मत जाना !" कहती किसी औरत की आवाज़ आई। कामदेव को कुतूहल हुआ। वह माया जानता था। इसलिए उस औरत को देखने के लिए अदृश्य हो गया।

दूसरे ही क्षण एक युवती वहाँ आई। उसका नाम छाया था और वह एक गन्धर्व की बेटी थी। वह तपन नाम के एक गन्धर्व-

कमलिनी देवी

कुमार पर मोहित थी। लेकिन तपन का प्यार अब उस पर नहीं रह गया था। पहले तपन इसी छाया देवी पर लट्टू था। लेकिन पीछे उसका मन बदल गया। वह मनोरमा नाम की एक दूसरी गन्धर्व कुमारी से प्रेम करने लग गया। अब वह छाया से पिण्ड छुड़ा लेना चाहता था।

बेचारी छाया बहुत घबरा गई थी। तपन का कहीं पता नहीं था। इसलिए वह उसकी खोज में निकली थी।

कामदेव को यह सारा किस्सा मालूम था। छाया को देखते ही उसे दया आ गई। उसने सोचा-"इस नारी के प्रति अन्याय न होने देना चाहिए।" इतने में उस का मित्र अनिल 'राग-बल्लरी' का मकरन्द ले आया। कामदेव ने उससे छाया का सारा किस्सा कह सुनाया और अन्त में बोला-"जाओ। ढूँढो उस तपन को और डाल आओ ये बूँदें उसकी पलकों पर !" अनिल उलटे पैर चला गया।

थोड़ी दूर जाने पर उसने देखा कि एक गन्धर्व कुमार और गन्धर्व कुमारी एक जगह सो रहे हैं। अनिल ने सोचा कि यही तपन है। बस उसकी दोनों पलकों पर मकरन्द की बूँदें डाल कर लौट गया।

लेकिन न तो वह पुरुष तपन था और न वह सोने वाली छाया थी। वह बसन्त नाम का एक और गन्धर्व-कुमार था और उस कुमारी का नाम था मनोरमा। यही वह कन्या थी जिसे देख कर तपन ने छाया को छोड़ दिया था। वह छाया की सखी ही थी। मनोरमा तपन से ब्याह करना नहीं चाहती थी। वह तो वसन्त से प्रेम करती थी। वसन्त भी उसे चाहता था। वे दोनों बिहार के लिए वन में आए थे और थक कर सो गए थे। अनिल ने गलती से उन्हें तपन और छाया समझ लिया था।

इस तरह मकरन्द की वे बूँदें बसन्त की पलकों पर जा पड़ी। बसन्त ने जब आँखें खोलीं तो सबसे पहले छाया ही को देखा। छाया तपन को खोजती हुई आ पहुँची थी। फिर क्या पूछना था ? रागवल्लरी के प्रभाव से बसन्त अपनी बगल में सोई हुई प्यारी मनोरमा की बात मूल गया और छाया पर मुग्ध हो गया।

यह देख कर छाया को आश्चर्य भी हुआ और भारी दुख भी। उसने सोचा-"कैसा नीच आदमी है यह! मनोरमा को वचन देकर अब मेरे पीछे पड़ा है। इन मरदो का कोई ठिकाना नहीं ! यह सोच कर वह तुरन्त वहाँ से भाग चली। वसन्त भी उसके पीछे-पीछे चला।

वसन्त के चले जाने के कुछ देर बाद मनोरमा की नींद टूटी। उठ कर देखा तो बसन्त लापता था। वह एकदम घबरा उठी सारा जङ्गल छान डाला। लेकिन वसन्त कहीं दिखाई न दिया। बसन्त के बदले उसे तपन दिखाई दिया जो छाया से बचने के लिए भागा फिर रहा था।

तपन मनोरमा को देखते ही खुशी से उछल पड़ा-"मनोरमा। मैंने छाया से पिण्ड छुड़ा लिया है। तुम्हारे सिवा में अब और किसी को नहीं चाहता।" वह बोला। उसकी बात सुन कर मनोरमा को बहुत कोध आ गया। उसने गरज कर कहा-"दुष्ट, अधम ! तू ने मेरी सखी को धोखा दिया। अब मुझे भी धोखा देना चाहता है। मेरा प्यारा वसन्त कहाँ गया ? मालूम होता है, तूने ही उसे कहीं छिपा रखा है। बता, तुरन्त को कहाँ छिपाया है तू ने ?"

उसकी बातें सुन कर तपन भौंचक्का रह गया। "मनोरमा ! सच कहता हूँ, मैं बसन्त का हाल कुछ भी नहीं जानता !"

फिर जाकर छाया को हूँढो और तपन के जागने के पहले ही उसे लाकर उसके सामने खड़ी कर देना !" कामदेव ने अनिल से समझा कर कहा।

अपनी गलती सुधारने के लिए अनिल तपन के पीछे-पीछे चला गया। थोड़ी दूर जाने के बाद तपन थक कर एक जगह सो रहा। बस, अनिल ने उसकी पलकों पर मकरन्द की बूँदें टपका दीं और छाया देवी को ढूँढ लाने के लिए दौड़ा।

थोड़ी देर बाद छाया भी दौड़ती-हाँफती वहीं आ पहुँची। उसके पीछे-पीछे बसन्त भी आया। उसे देख कर छाया चिल्ला उठी-"क्या कोई ऐसा दयावान पुरुष नहीं है, जो मुझे इस दुष्ट पापी के चंगुल से बचाए?"

उसका चिल्लाना सुन कर कामदेव और अनिल दौड़े आए और अदृश्य रूप में तमाशा देखने लगे। छाया के चिल्लाने से तपन की नींद टूट गई। ज्यों ही छाया पर उसकी नजर पड़ी, त्यों ही राग-वल्लरी के

इतना कह कर वह जल्दी-जल्दी यहाँ से चला गया। वसन्त को खोजती हुई मनोरमा भी चली गई।

कामदेव इसी समय अनिल के साथ आकाश मार्ग से जा रहा था। उसने दोनों की बात-चीत सुन ली। सुनते ही समझ गया कि अनिल से कोई बड़ी मारी गलती हो गई है। चलते-चलते तपन की ओर उँगली उठा कर उसने पूछा-"तुपने इसी की पलकों पर बूँदें डाली थीं न ?"

अनिल ने तपन को गौर से देख कर कहा-"'नहीं, वह तो कोई दूसरा था। हाँ, लड़की तो वही है !"

"अच्छा ! जो हो गया सो हो गया। अब तुम उस तपन का पीछा करो और उस के सो जाते ही मकरन्द की बूँदें उसकी पलकों पर डाल आओ।

प्रभाव से उसके हृदय में प्रेम का स्रोत उमड़ पड़ा। वह उसे प्रेम से पुकारने लगा। यह देख कर छाया दङ्ग रह गई। "क्या यह वही तपन है जो उससे कभी कतराता फिरता था। नहीं, यह तो सपना मालूम होता है !" उसने सोचा। इतने में बसन्त ने आगे बढ़ कर कहा-"छाया! मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। इसे चले जाने को कहो !" उसकी बात सुन कर छाया ने सोचा-"दोनों एक से एक बढ़ कर हैं।"

इतने में मनोरमा भी वहाँ आ पहुँची। उसने देखा कि छाया के वास्ते वसन्त और तपन दोनों लड़ने पर आमादा हैं। उसने सोचा-"यह सब छाया की करतूत है। शायद यह दुष्टा इन दोनों गन्धर्व-कुमारों से स्वयं व्याह करना चाहती है।" यह सोच कर वह छाया को कोसने लगी। उसकी बातें सुन कर छाया रो-रोकर कहने लगी-"इसमें मेरा कोई दोष नहीं !"

इधर तपन और बसन्त दोनों भूखे बाघों की तरह एक दूसरे पर टूट पड़े। यह देख कर कामदेव ने सोचा नाहक दोनों की जान जाएगी। तब उसने अपनी माया से पल में उन

दोनों के बीच एक गहरी और चौड़ी नदी बहा दी। अब उस पार से बसन्त और इस पार से तपन एक-दूसरे पर लाठियाँ फेंकने लगे। लेकिन उन दोनों की लाठियाँ नदी में गिर कर वह गई। दोनों दो किनारों पर खड़े एक-दूसरे को कोसते और धमकाते रहे। इधर रो-रोकर एक ओर छाया बेहोश हो गई और दूसरी ओर मनोरमा मूर्छित होकर गिर पड़ी।

यह देख कर कामदेव ने कहा-"अनिल ! अब होश में आने के पहले ही छाया को उठा ले जाओ और तपन के पास छोड़ आओ ! अनिल ने वैसा ही किया। "अच्छा, अब मनोरमा को भी उठाओ और

उस पार वसन्त के पास छोड़ आओ।" कामदेव ने कहा। अनिल कामदेव का हुक्म बना लाया। फिर कामदेव ने कहा-"भाई ! अभी हमारा काम खतम नहीं हुआ है। तपन और छाया तो जागने के बाद एक दूसरे को देख कर खुश होंगे। लेकिन नदी के उस पार बसन्त और मनोरमा को जागने पर कोई खुशी न होगी। क्योंकि 'राग बल्लरी' के प्रभाव से जागने के बाद भी बसन्त छाया की रट लगाए बैठा रहेगा। क्या इस औषध का प्रभाव किसी प्रकार दूर नहीं किया जा सकता !"

"क्यों नहीं " इतना कह कर अनिल दौड़ कर गया और एक नई जड़ी ले आया। उस जड़ी का रस उसने वसन्त की आँखों में डाल दिया। बस, राग बल्लरी का प्रभाव जाता रहा और वसन्त पहले की तरह मनोरमा से प्रेम करने लगा। यह जान कर कामदेव ने अपनी माया की नदी गायब कर दी। दोनों जोड़ियों हँसी-खुशी बातें करती चली गई । जो कुछ बीता, उनको वह एक दुःस्वप्न सा लगता था।

अब कामदेव ने पल भर भी देरी न की। तुरन्त दौड़ कर घर गया। देवी रती अभी सो रही थी। उनकी मुदी हुई पलकों की ओट से कोध स्पष्ट झलकता था। बस, कामदेव ने मकरन्द की बूँदे उनकी पलकों पर चुला दीं। फिर उनके जागने का इन्तजार करते हुए सामने बैठा रहा।

देवी रती जागी। उनका सारा क्रोध काफूर हो गया। "प्यारे ! तुम कहाँ गए थे ! मुझे छोड़ कर क्यों चले गए। फिर कभी इस तरह चले तो नहीं जाओगे ?" उन्होंने दीन-स्वर में कहा।

तब उनका हाथ पकड़ कर कामदेव ने, जो असली रहस्य जानता था, मुसकुरा कर कहा-"अब तुम्हें कभी मुझ पर गुस्सा भी नहीं आएगा !"

जापान की राजधानी टोकियो है। इस शहर में एक बड़ा विश्व विद्यालय है। इस विश्व विद्यालय में किसी समय एक प्रोफेसर थे। जिनका नाम था 'जोटो'। प्रोफेसर जोटो ने एक कुत्ता पाल रखा था। उसका नाम था 'रीटा'। रीटा से उन को बड़ा प्यार था। वे उसे अपनी सन्तान की तरह चाहते थे। रीटा भी अपने मालिक को बहुत चाहता था। वह हमेशा छाया की तरह उनके साथ लगा रहता था।

अकसर ऐसा होता है कि बड़े-बड़े शहरों में नौकरी या दूसरे काम करने वाले बहुत से लोग शहर के एक छोर पर या आस-पास के छोटे-छोटे गाँवों में रहते हैं। इसमें कई सुविधाएँ होती हैं और वे भीड़-भड़ाके से बचे रहते हैं।

ऐसी जगहों से शहर में आने-जाने के लिए बसें और बिजली की रेलगाड़ियाँ दौड़ती रहती हैं। प्रोफेसर जोटो ऐसे ही शहर से दूर के एक छोटे से बङ्गले में रहते थे। वे बिजली की गाड़ी से रोज़ विश्व-विद्यालय आया-जाया करते थे।

जोटो साहब का बङ्गला स्टेशन से करीब आधे मील की दूरी पर था। विश्व विद्यालय जाने का समय होते ही प्रोफेसर कपड़े-लते पहन कर तैयार हो जाते। त्यों ही रीटा दुम हिलाता उनके साथ हो जाता।

स्टेशन तक वह उनके पीछे-पीछे जाता; मालिक के साथ वह गाड़ी का इन्तज़ार करता और गाड़ी छूट जाने के बाद अकेले बङ्गले पर लौट आता।

प्रोफेसर रोज़ शाम को चार बजे की गाड़ी से विश्व-विद्यालय से लौटते थे। इसलिए चार बजने के कुछ पहले ही रीटा स्टेशन पहुँच जाता था और मालिक की राह देखता रहता था। प्रोफेसर को गाड़ी से

रामचरण जोशी

उतरते देख वह खुशी से उछल पड़ता और पूँछ हिलाते दौड़ कर, उनके हाथ-पैर चूमने लगता। फिर मालिक के पीछे-पीछे वह घर लौट आता।

यों कई बरस बीत गए। एक दिन प्रोफेसर विश्व-विद्यालय गए थे कि अचानक हृदय रोग का अक्रमण हुआ। देखते-देखते उनकी जान आफत में पड़ गई। विश्व-विद्यालय के प्राध्यापक वगैरह बहुत घबरा उठे। डाक्टर बुलाया गया।

लेकिन डाक्टर के आने के पहले ही जोटो साहब की आखिरी घड़ी नज़दीक हो गई।

आखिर मरणासन्न प्रोफेसर ने इशारे से प्राध्यापक को नज़दीक बुलाया और बहुत धीमे स्वर में कहा-"मेरी सारी पढ़ाई-लिखाई इसी विश्व-विद्यालय में हुई। मेरी सारी उमर यहीं कटी। सौभाग्य से में प्राण भी यहाँ छोड़ रहा हूँ। अब देर नहीं है। मुझे बचाने की कोशिश बेकार है। बस, मेरी आखिरी इच्छा यही है कि मेरी लाश को भी यहीं कहीं दफना दिया जाए। और कोई इच्छा नहीं।"

इतना कहते-कहते जोटो ने सदा के लिए आँखें मूँद ली। उनकी अन्तिम इच्छा के अनुसार प्राध्यापक ने उनकी लाश विश्वविद्यालय के अहाते ही एक जगह में दफनवा दी।

*　　*　　*　　*

उस शाम को भी रीटा हर रोज़ की तरह स्टेशन पर पहुँचा। लेकिन चार बजे की गाड़ी से उसका मालिक न उतरा। बड़ी देर तक वह इन्तज़ार करता रहा। एक के बाद एक करके बहुत सी गाड़ियाँ निकल गई। लेकिन उसका मालिक नहीं आया। चारों ओर जब अन्धेरा छा गया तो निराश होकर वह बङ्गले पर लौट गया। दूसरे दिन

वह बड़े तड़के फिर स्टेशन पहुँचा और शाम तक इन्तज़ार करता रहा।

इस तरह वह रोज तड़के स्टेशन आता और शाम तक इन्तजार करके मनहूस कदम रखते लौट जाता। कुछ दिन तक तो किसी ने उसकी ओर ध्यान न दिया। लेकिन धीरे-धीरे स्टेशन के कुली, टिकट-बाबू, स्टेशन मास्टर वगैरह का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। उन लोगों ने सोचा-"किस का कुत्ता है यह ? रोज तड़के आता है और शाम तक आने-जाने वाले लोगों को देखता बैठा रहता है !"

एक दिन किसी ने कहा-"यह स्वर्गीय जोटो साहब का कुत्ता है। वे अचानक विश्व-विद्यालय में ही मर गए। इस बेचारे को पता नहीं कि अब वे नहीं लौटेंगे। वे तो ऐसी जगह पहुँच गए हैं जहाँ से कोई गाड़ी नहीं आती। यह बेचारा अपने उसी मालिक के लिए रोज़ यहाँ आता है और दिन भर इन्तजार करता बैठा रहता है।

तब बहुत से लोगों ने कई तरह से रीटा को यह समझाने की कोशिश की कि उसका मालिक मर गया है। लेकिन बेचारा रीटा उनकी ज़बान कैसे समझ सकता ? वह रोज उसी

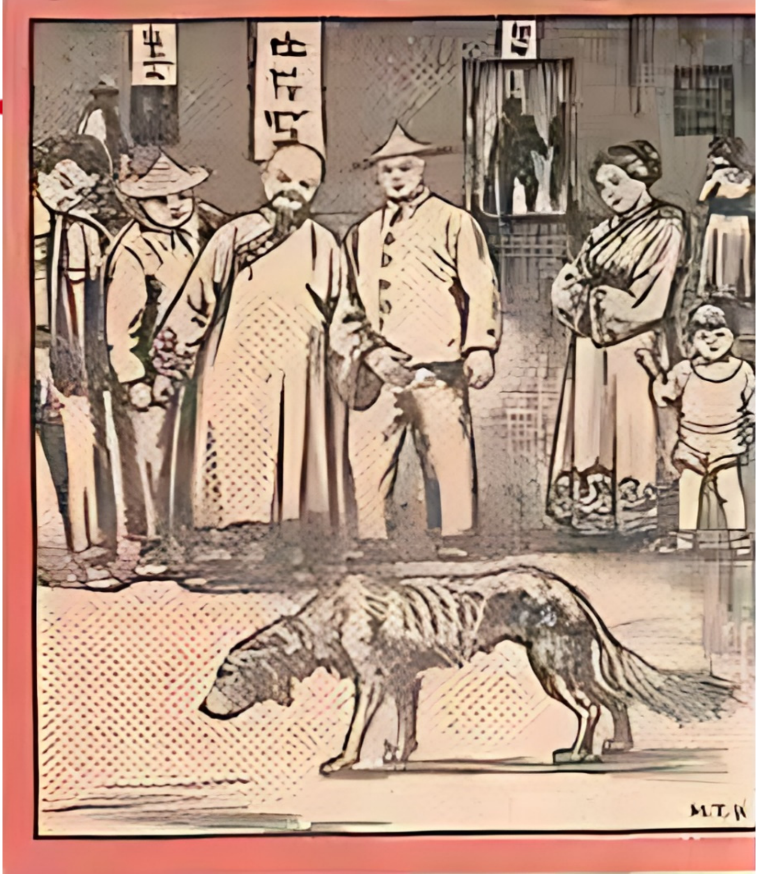

तरह आकर इन्तज़ार करता ही रहा।

समय बीतता गया। दिनों के बाद महीने, महीनों के बाद साल बीत गए। उस स्टेशन के बहुत से कर्मचारियों की अदला-बदली हो गई। कई नए-नए कर्मचारी आ गए। उन लोगों ने जब रीटा की कहानी सुनी तो उन्हें बहुत अचरज हुआ। मालिक के प्रति उस कुत्ते का यह अनोखा प्रेम देख कर सबके सब दङ्ग रह गए। रीटा के कारण उन सबके हृदय में जोटो साहब के लिए जगह बन गई। उनकी स्मृति हरी रही।

रीटा रोज़ स्टेशन आता ही रहा। धीरे धीरे वह चिन्ता से घुलने लगा। खाना-पीना छोड़ दिया। सूख कर काँटा हो गया। चलने-फिरने की भी ताकत न रही। फिर भी स्टेशन पर आता ही रहा। अब तक जोटो साहब को मरे आठ साल हो गए थे। एक दिन रीटा लड़खड़ाता, किसी तरह स्टेशन तक पहुँच तो गया, लेकिन लौट न सका। आधी रात को टोकियो शहर से आखिरी गाड़ी आई और रीटा ने एक लम्बी साँस लेकर आँखें मूँद ली। बस, फिर उसकी आँखें नहीं खुलीं।

रीटा के मरने की खबर सुन कर आस पास के रहने वाले बच्चे-बूढ़े, औरत-मर्द सब की आँखें भर आई। वे सोचने लगे-"यह कुत्ता था। लेकिन आदमी से कहीं बफादार था ! भला मालिक को और कौन इस तरह प्यार कर सकता है ?" ये सभी लोग रीटा को बहुत चाहने लग गए थे। अपनी सन्तान से भी बढ़ कर उसे मानने लगे थे। बहुत से लोगों ने रीटा को अपने घर ले जाकर पालने पोसने की कोशिश भी की थी। लेकिन वह किसी के घर नहीं गया। स्टेशन, नहीं तो मालिक का बङ्गला, इन्हीं दोनों जगह उस का जीवन बीता। उसके मरने की खबर पाते ही लोगों ने फूलों का एक रथ सजाया और रीटा की लाश को उस पर रख कर बड़ी धूम-धाम से जुलूस निकाला। दूर-दूर से आकर बहुत से लोग इस जुलूस में शामिल हुए। यह जुलूस स्टेशन पर जाकर खतम हुआ। स्टेशन के सामने ही एक कब्र खोदी गई और उसमें रीटा को दफना दिया गया। उस कब्र के ऊपर एक सङ्गमरमर के पत्थर पर रीटा की सारी राम कहानी खोद दी गई।

आज भी बहुत से लोग जाते हैं और स्टेशन के सामने सङ्गमरमर पर खुदी हुई, उस अजीब कुत्ते की कहानी पढ़ कर अचरज करने लगते हैं।

पुलिन्द-नगर के राजा का नाम सुगुणसिंह था। सुगुणसिंह ने चालीस साल तक राज किया। उसके शासन में प्रजा बहुत सुखी थी और किसी को कोई कमी न थी।

आखिर जब सुगुणसिंह बूढ़ा हो गया तो एक रात उसने सोचा-"मैं तो अब कुछ ही दिनों का मेहमान हूँ। यह राज्य भार अब और नहीं ढो सकता। अब तो युवराज का राज तिलक कर देना चाहिए और फिर जङ्गलों में जाकर भगवान का भजन करना चाहिए।" यों सोचता राजा टहल रहा था। आधी रात हो गई थी। बरामदे के बाहर पूनम की चाँदनी छिटक रही थी। इतने में किले के घण्टाघर ने 'टन्-टन्' करके बारह बजाए।

बूढ़े राजा ने मुड़ कर अपने पलङ्ग की ओर देखा तो उसकी आँखें चौंधिया गई। यह क्या ? सुनहरे बदन वाली यह कौन सुन्दरी, चाँदनी सी छिटकाती हुई, वहाँ बैठी हुई है ! कहीं यह स्वप्न का तो खेल नहीं ?" उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

"राजन्! तुम मुझे नहीं पहचानते ?" उस सुन्दरी ने मधुर स्वर में सवाल किया। राजा अवाक खड़ा रह गया।

"मेरा नाम यशोदेवी है। मैंने ही तुम्हें धर्म-पथ से फिसलने से बचा रखा था। मेरे ही कारण तुम्हारा यश सारे संसार में फैला हुआ है।" वह सुन्दरी बोली। राजा को बहुत खुशी हुई।

"देवी! मैं इस कृपा के लिए हमेशा कृतज्ञ रहूँगा। मुझे अब यही चिन्ता है कि मेरे बाद मेरा लड़का भी धर्म-पथ पर चलेगा कि नहीं ?" राजा बोला।

तब उस देवी ने कहा-"राजन् ! तुम चिन्ता न करो। जिस तरह मैं तुमको धर्म का रास्ता दिखाती आई थी उसी तरह तुम्हारे लड़के को भी दिखाती रहूँगी।"

सुन्दरलाल मलहोत्रा

इतना कह कर वह देवी अन्तर्धान हो गई। कुछ दिन बाद सुगुणसिंह चल बसा और युवराज शीलसिंह गद्दी पर बैठा। बूढ़े मन्त्री धर्मपाल ने कोई गड़बड़ी न होने दी और युवराज की सब तरह से सहायता की।

एक दिन पूनम की रात के बारह बजे शीलसिंह के सामने भी यशोदेवी प्रत्यक्ष हुई। उन्हें देख कर पहले शीलसिंह को भी बहुत आर्य हुआ। यशोदेवी ने नए राजा को आशीर्वाद दिया और एक मुँदरी देकर कहा-"बेटा! लो, यह मुँदरी ! जब-जब कोई अनुचित कार्य करने लगोगे, तब-तब तुम्हारी नज़र इस मुँदरी पर पड़ेगी और तुम्हें मेरी याद आ जाएगी। तुम तुरन्त चेत जाओगे और अपनी भूल सुधार लोगे !" इस तरह सदुपदेश देकर देवी अद्दश्य हो गई। विस्मित होकर शीलसिंह ने मुँदरी पहन ली और हमेशा देवी का उपदेश याद रखने का निश्चय किया।

उस मुँदरी के प्रभाव से और बूढ़े मन्त्री धर्मपाल की सलाह से शीलसिंह बहुत दिनों तक न्याय के पथ पर चलता रहा। राज में शान्ति विराज रही थी। फिर भी युवक शीलसिंह के मन में कभी-कभी अन्य राज्य जीतने और साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा जाग उठती थी।

ऐसे ही समय सेनापति दण्डपाल से शीलसिंह की बड़ी दोस्ती हो गई। बेचारा धर्मपाल बूढ़ा था। दण्डपाल युवक था। इसलिए शीलसिंह पर अपना प्रभाव डालने में उसे कोई कठिनाई न हुई।

धीरे-धीरे शीलसिंह दण्डपाल के इशारों पर नाचने लगा। हर बात में अब वह उसी का मुँह ताकता था। दण्डपाल को भी युद्ध करने और दूसरे राज्यों पर चढ़ाई करने की बहुत लालसा थी। उसने शीलसिंह को खूब उकसाया। अक्सर वह कहने लगता

था-"जो राजा दूसरे राजाओं पर चढ़ाई न करें, अपने शत्रुओं का नाश न करे, वह राजा ही क्या ? राजा का तो धर्म ही है युद्ध करना !"

इस तरह की बातें सुनते-सुनते शीलसिंह का मन बदल गया। अब वह किसी काम

में धर्मपाल की राय न लेता था। आखिर उसने आस-पड़ोस के राजाओं पर चढ़ाई करना ही अपना धर्म बना लिया। बूढ़े मन्त्री धर्मपाल ने युवक राजा की टेढ़ी भौहों की परवाह न करके बार-बार उसे समझाने की चेष्टा की। लेकिन कोई नतीजा न निकला। यशोदेवी की दी हुई मुँदरी की तो अब याद भी न रह गई थी।

इस तरह हमेशा युद्ध में लगे रहने के कारण शीलसिंह का स्वभाव भी बदल गया। क्रूरता उसके हृदय में घर कर गई। निरन्तर रक्त-पात देखते-देखते उसकी छाती पत्थर की हो गई। सहन-शीलता तो उसमें बिलकुल न रही।

अब वह बात-बात पर चिढ़ने और बिगड़ने लगा। लोग उसे देख कर भय से काँपने लगे। वह अपनी प्रजा को भी बहुत सताने लगा।

हमेशा युद्ध करते रहने के कारण राज्य का खजाना खाली हो गया था। इसलिए शीलसिंह ने रियाया के ऊपर नए-नए कर लगाए। करों के बोझ से लोग दबे जाने लगे। लेकिन किसी को इस जुल्म के खिलाफ अपनी आवाज़ उठाने की हिम्मत न होती थी।

यों अत्याचार सहते-सहते इस राजा पर से प्रजा का विश्वास उठ गया। यहाँ तक कि उसकी फौज भी उसके खिलाफ खड़ी हो गई।

आखिर ऐसी हालत हो गई कि शीलसिंह को अपने जीवन से भी वैराग्य हो गया।

उसने सोचा-"सब लोग मुझसे घृणा करने लगे हैं। ऐसी हालत में मैं जीकर क्या करूँगा ? मैंने अनेक राजाओं को हराया। हरे-भरे घर उजाड़ दिए और अनेकों की आशाएँ मिट्टी में मिला दी। नतीजा क्या हुआ? खजाना खाली हो गया और मुझे नए नए कर लगाने पड़े। अब मेरी प्रजा भी मुझसे घृणा करने लगी है !" यों वह पछतावे की आग में जलने लगा। वह बार-बार यशोदेवी की दी हुई मुँदरी पर नज़र डालने और सिर धुनने लगा।

इसी बीच मन्त्री धर्मपाल की मौत हो गई। अब शीलसिंह के कपटी मित्र दण्डपाल आदि खुल कर खेलने लगे। राज्य का सारा अधिकार दण्डपाल ने हथिया लिया। उसके अत्याचारों की हद हो गई थी। वहाँ तक कि राजमहल में भी उसी की बात चलती थी। राजा शीलसिंह को पूछने वाला कोई भी न रह गया था। एक दिन राज-महल में बड़ी हलचल पैदा हो गई। दासियाँ फुसफुसाने लगी कि राजा की चचेरी बहन 'पावनी' को दण्डपाल पकड़ ले गया है। इस खबर के कानों में पड़ते ही शील सिंह का खून खौलने लगा। उसका नशा टूट गया। उसने बूढ़े राजा की याद दिला कर सेना को जमा किया और दण्डपाल से युद्ध करके पावनी को छुड़ाया। दूसरे राजाओं से उसने सन्धि कर ली। सभी नए लगाए कर उठा दिए। दण्डपाल और उसके अनुयाइयों के न रहने से राज्य में फिर शान्ति विराजी।

अब शीलसिंह मुँदरी को देख कर यशोदेवी की याद करने और अन्याय से बचने लगा। कुछ ही दिनों में उसका फिर पहले का सा नाम हो गया। लोगों ने समझ लिया कि दण्डपाल आदि दुर्जनों की सङ्गत करने से ही शीलसिंह का चरित्र बिगड़ गया था। नहीं तो क्या उसकी नसों में सुगुणसिंह का खून नहीं वह रहा था ?

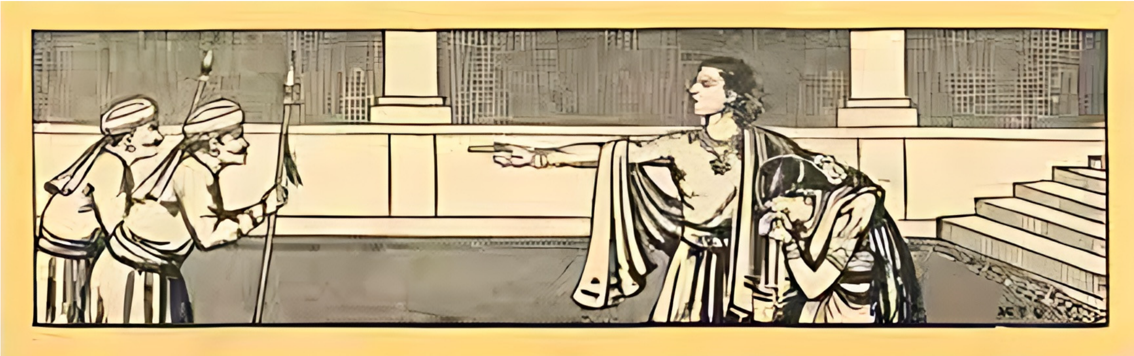

देवीनगर में एक प्रसिद्ध मन्दिर था। वह मन्दिर बहुत पुराना था। उसके ज्यादातर हिस्से टूट-फूट गए थे। मन्दिर तो खण्डहर सा हो गया था, लेकिन उसमें जो मूर्तियाँ थीं, उनकी सुन्दरता अब भी वैसी ही बनी हुई थी। उन मूर्तियों की बड़ी प्रशंसा सुन कर रामसिंह नाम का एक व्यक्ति उस मन्दिर को देखने गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि मन्दिर के शिखर, स्तम्भ, मण्डप आदि शिल्पी की अनुपम चतुरता का प्रमाण दे रहे हैं। जगह-जगह रखी मूर्तियों को देख कर मालूम होता था, जैसे वे बोलना ही चाहती हैं।

उन सबमें से एक मूर्ति ने उसे बहुत ज्यादा आकर्षित किया। वह देवी सरस्वती की मूर्ति थी और मन्दिर के एक कोने में पड़ी हुई थी। बदन से सजीवता बरस रही थी। उस मूर्ति की सुन्दरता का तो बखान हो ही नहीं सकता था। रामसिंह ने सोचा- "न जाने, वह कौन सा मूर्तिकार था, जिसने स्वर्ग की इस सुषमा को धरती पर साकार उतार दिया। धन्य है वह। इतने में उसे एक सन्देह हो आया। उसने सोचा-"इस दिव्य मूर्ति को तो मन्दिर के अन्दर वेदी पर रखना चाहिए था। यह इस कोने में क्यों उपेक्षित पड़ी है !"

इस उधेड़-बुन में पड़ा रामसिंह बड़ी देर तक खड़ा रह गया। इतने में उसे किसी के आने की आहट सुनाई दी। उसने तुरन्त पीछे मुड़ कर देखा। मन्दिर की देहली पर एक बूढ़ा, जो अधमरा सा लगता था और फटे चिटे गन्दे पहने हुए था, जिसकी आँखें धँसी हुई सी और बाल उलझे और रूखे-सूखे थे, पागल की तरह खड़ा खड़ा एक टक उसी मूर्ति की ओर देख रहा था। रामसिंह ने सोचा- "शायद मैंने इसी की आहट सुनी थी।" वह उस बूढ़े के नज़दीक गया।

अबधेश त्रिपाठी

"क्या आप जानते हैं कि यह मूर्ति इस तरह बाहर क्यों पड़ी हुई है ? इसे अन्दर क्यों नहीं रखा गया ?" उसने सवाल किया। बूढ़ा कुछ नहीं बोला। रामसिंह ने उस मन्दिर के बारे में और भी कई बातें पूछी। अन्त में बूढ़े ने एक लम्बी साँस लेकर कहना शुरू किया-"बेटा! इस देश में एक बहुत ही धर्मात्मा राजा था। वह प्रजा को अपनी सन्तान ही समझता था।

उस राजा को कला-कौशल से बहुत प्रेम था। वह कवियों, चित्रकारों, मूर्तिकारों और गायकों का बहुत सम्मान करता था। एक बार इस राजा के मन में हुआ कि एक ऐसा

मन्दिर बनवाया जाए, जिससे उसका नाम संसार में अमर हो जाए। उसने मन्त्री से अपने मन की बात कही। मन्त्री ने तुरन्त सारे राज में इस विषय की घोषणा करा दी, जिसे सुन कर दूर-दूर के मूर्तिकार और शिल्पी उस राजा के यहाँ आने लगे। शिल्पियों ने नम्रता-पूर्वक अपनी-अपनी विशेषताएँ राजा से कह सुनाई। उनमें से परमवीर नामक शिल्पी ने राजा से यों कहा- 'राजन्! इस मन्दिर के निर्माण का भार आप मुझे सौंप दीजिए। मैं ऐसी-ऐसी मूर्तियाँ गढ़ूँगा कि युग-युग तक आपका नाम प्रातःस्मरणीय रह जाएगा !'

यह सुन कर राजा खुशी से फूल उठा। उसने मन्त्री को हुक्म दिया कि 'मन्दिर- निर्माण के लिए यह शिल्पी, जितना धन चाहे, जो-जो वस्तुएँ चाहे, तुरन्त जुटा दो।' दूसरे ही दिन से काम शुरू हो गया। हजारों कारीगर काम करने लगे। अपार धन और अथक परिश्रम से तीन साल बाद व ह अपूर्व मन्दिर तैयार हुआ। परमवीर की सब बातों पर निगरानी थी। उसने मन्दिर में स्थापित करने के लिए जो मूर्तियाँ बनाई थीं, वे बहुत सुन्दर थीं। खास कर देवी सरस्वती की एक मूर्ति, जो भगवान की मूर्ति

की बगल में स्थापित करने के लिए बनाई गई थी, अपूर्व थी।" इतना कह कर बूढ़ा थोड़ी देर चुप रहा, जैसे वह अपनी पुरानी यादगारियों में खो गया हो। "फिर क्या हुआ ?" रामसिंह का प्रश्न सुन कर वह चेता और कहने लगा-"आखिर जब सब कुछ हो गया, तब राजा मन्दिर को देखने आए। उन सुन्दर मूर्तियों को देख कर उन्हें बहुत आनन्द हुआ। इतने में उनकी नजर देवी सरस्वती पर पड़ी जो मन्दिर के एक कोने में रखी हुई थीं।

'यह क्या ? ऐसी सुन्दर मूर्ति को यहाँ किसने रखा? इसे मन्दिर के गर्भ में भगवान के साथ क्यों नहीं प्रतिष्ठित किया गया ?' राजा ने पूछा। राजा के पास ही मन्त्री खड़ा था। उसे परमवीर से कुछ चिढ़-सी हो गई थी। राजा उसका इतना सम्मान करता था

कि देख कर मन्त्री मन-ही-मन जलने लग गया था। इसीलिए वह नहीं चाहता था कि इस सुन्दर मूर्ति को मन्दिर के गर्भ गृह में स्थान मिले। उसने कहा-'हुजूर ! यह परमवीर की गढ़ी हुई मूर्ति है और यह उसे अपनी सब मूर्तियों से प्यारी

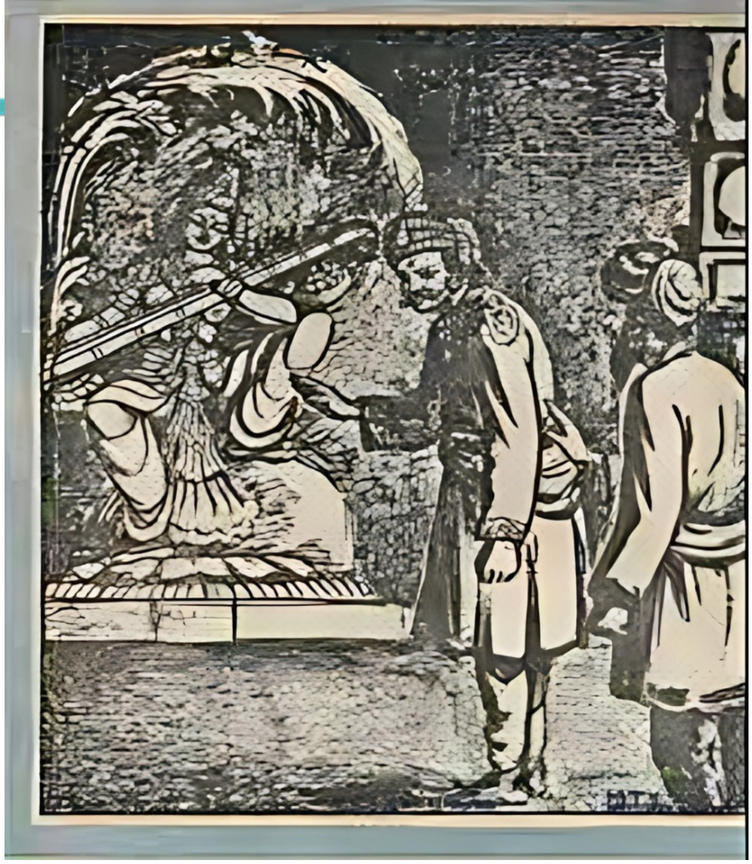

है।' 'ठीक तो है, यह है भी तो बहुत सुन्दर ! इसे भगवान की मूर्ति की दाई ओर बिठा दो!' महाराज ने कहा। 'लेकिन महाराज ! मेरी एक छोटी सी विनती है। राज्य की प्रजा यह चाहती है कि महाराज की एक मूर्ति बनाई जाए और भगवान की दाई ओर वही विठाई जाए। कहा भी है कि राजा भगवान का अंश है। इससे महाराज की स्मृति चिर-स्थाई होगी।' चतुर मन्त्री ने बड़ी चालाकी से यह सुझाव पेश किया। दरबारियों ने भी समर्थन में सिर हिला दिए। राजा का मन डोल गया। मन्त्री की बात उसे जँच गई। उसने परमवीर को अपनी एक मूर्ति गढ़ने की आज्ञा दी। लेकिन परमवीर ने इनकार कर

दिया। उसने विनीत-स्वर में कहा- 'हुजूर यह मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं मनुष्य की मूर्ति नहीं गढ़ता। मैं महाराज के लिए सब कुछ दे सकता हूँ। लेकिन अपनी यह टेक नहीं तोड़ सकता।' राजा ने उसे बहुत से लालच दिए। दरबारियों ने भी उसे बहुत समझाया-बुझाया। लेकिन परमवीर टस से मस न हुआ। आखिर महाराज को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा-'अच्छा! तुमने हठ करके अपने पैरों पर आप ही कुल्हाड़ी मार ली। जाओ! सरखती की इस मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा न होगी। यह मन्दिर के कोने में इसी तरह पड़ी रहेगी। साथ ही सुन लो ! तुम इस राज में फिर कभी दीख पड़े तो अपनी जान से भी हाथ धो बैठोगे ! जाओ !'

परमवीर तत्क्षण वहाँ से चला गया। मन्दिर में भगवान की प्रतिष्ठा हुई। लेकिन देवी सरस्वती की यह मूर्ति इसी तरह पड़ी रही। उधर परमवीर इस अपमान की चिन्ता से घुल-घुल कर कुछ ही दिनों में चल बसा। वर्ष पर वर्ष बीत गए। राजा भी मर गया और देश पर दुश्मनों ने अधिकार कर लिया। यहीं इस मन्दिर का इतिहास है।" बूढ़ा इतना कह कर चुप हो रहा।

"तो मन्त्री को परमवीर की टेक पहले मालूम नहीं थी ?" रामसिंह ने पूछा। "मालूम क्यों नहीं थी ? उसने जान-बूझ कर ईर्ष्या वश परमवीर को चौपट कर दिया था।" बूढ़े ने कहा। "फिर उस दुष्ट मन्त्री का क्या हुआ ?" रामसिंह ने पूछा।

"देखना चाहते हो उसे ?" चूढ़े ने कहा। "क्या वह दुष्ट अब भी जिन्दा है ?" रामसिंह ने पूछा। "हाँ, अपनी कलङ्क कहानी सुनाने के लिए ज़िन्दा रहा। लेकिन अब जिन्दा नहीं रहेगा। यही है वह पापी मन्त्री !" इतना कह कर बूढ़े ने कमर से कटार निकाल ली और रामसिंह के कुछ कहने के पहले ही अपनी छाती में भोङ्क ली।

एक बार एक पण्डित और एक किसान के बीच बहस उठ खड़ी हुई कि दुनियाँ में बड़ा कौन है ? "जब देखो, हल जोतना, बोना, निराना, काटना ! यही न? अरे, भैया ! ज़मीन निराने से क्या होता है ? पहले अपने मन को निराओ, मन को ! देखो, सामने वह पेड़ खड़ा है; बताओ, उस मैं और तुममें क्या अन्तर है !" पण्डित ने किसान से पूछा।

किसान ने जवाब दिया-"पूज्य पण्डित जी! शायद आप भूलते हैं कि मैं समाज के लिए आप से ज्यादा काम का आदमी हूँ। आपके ज्ञान के बिना भी दुनियाँ खुशी से चलती रहेगी। लेकिन मेरे उपजाए अन्न के बिना एक दिन भी किसी का काम न चलेगा।

यह सुन कर पण्डित जी बड़े सोच में पड़ गए।

किसान फिर कहने लगा-"क्या सोच रहे हैं पण्डित जी ? लीजिए, एक छोटी सी कहानी सुनिए। किसी समय एक पत्थर और कीचड़ के बीच झगड़ा होने लगा। पत्थर कहता था-'देखो! मैं कितना शक्तिशाली हूँ! कितना साफ-सुथरा और सुन्दर हूँ ! तुम ? कैसे लथपथ हो ! छूते ही हाथ गन्दे हो जाते हैं। तुम्हें देखते ही आदमी घृणा से दूर हट जाता है। कभी किसी के पैर में लग भी गए तो धोए बिना उनको चैन नहीं पड़ता !' पत्थर ने कीचड़ की हँसी उड़ाई।

पत्थर की घमण्ड भरी बातें सुन कर कीचड़ को भी गुस्सा आ गया। वह बोला-'अरे कठोर पत्थर ! मैं देखने में गन्दा भले ही लगूँ, लेकिन मनुष्य को जीवन देने वाला अन्न कहाँ से उपजता है, जानता है? मेरी ही छाती से !' कीचड़

विजयकुमार

ने सगर्व जवाब दिया।" किसान ने अपनी कहानी खतम की।

उसकी कहानी सुनने के बाद पण्डित जी बोले-"ऐ भने मानुस ! फीचड़ की बात तो सच है। वह काटी नहीं जा सकती। लेकिन जरा उस ओर तो देखो! वे बड़े-बड़े मन्दिर महल कैसे बनते हैं ? पत्थर की मदद से ही न ? इसलिए दुनियाँ में हर चीज की जरूरत होती है।" इस पर किसान बोला-"अब आप तो मेरी ही तरफ बोलने लगे हैं। इतना मान तो लिया कि दुनिया में हर चीज की जरूरत होती है। अच्छा तो सुन लीजिए और एक छोटी सी कहानी ! पीछे अपनी राय दीजिएगा। यह कह कर किसान ने कहानी शुरू कर दी। 'एक जङ्गल में एक बरगद का पेड़ था और एक सागवान का। एक बार बरगद ने सागवान को नीचा दिखाने के लिए कहा-'सुनो! मैं हजारों प्राणियों को आश्रय देता हूँ। तुम्हारे पत्ते तो बहुत बड़े-बड़े हैं। लेकिन तुमसे दुनिया की कोई भलाई नहीं होती !'

तब सागवान बोला-'रे अभिमानी बरगद ! छोटे मुह बड़ी बात कर रहा है। जरा अपनी योग्यता तो विचार ले ! बता, तेरी छाँह किस काम की ? मेरी लकड़ी की मदद से आदमी घर बनाते हैं, जो सैकड़ों बरस तक धुप और बारिश से उन्हें बचाए रखते हैं।' यों सागवान ने मुँह तोड़ जवाब दिया।" ज्यों ही किसान ने अपनी कहानी खतम की, पण्डित जी ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोले- "भैया ! तुम्हारा कहना सोलह आने सच है। तुम छाँह देने वाले बरगद हो और मैं घर बनने वाला सागवान हूँ। तुम उपजाऊ कीचड़ हो और मैं मन्दिर महल बनाने वाला पत्थर हूँ। ऊँच नीच कुछ भी नहीं। दुनिया को हम दोनों की जरूरत है।" बस, दोनों का विवाद मिट गया।

CHANDAMAMA (Hindi) JANUARY 1953 Regd. No. M. 5452

रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र — ६